दिसंबर १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धन्य हुई वैशाली

तथागत सहित पांच सौ भिक्षुओं को लिए हुए विशाल जुड़वां नौकाएं गंगा नदी पार करती हुई उत्तरी तट पर स्थित लिच्छवियों की गणतंत्र भूमि की ओर मंथर गति से बढ़ने लगी। जब मगध का तट छोड़ा तो आकाश निरभ्र था। बादल का एक छूंछा भी कहीं नहीं दीख रहा था। परंतु गंगा की मध्य धारा को पार करते-करते आकाश में बादल छाने लगे। अगले तट के समीप पहुँचते-पहुँचते सारा आसमान घने काले बादलों से भर उठा। अपराह्न का सूर्य इस घन-घटा के पीछे छिप गया। घनीभूत मेघमाला की गुरु-गंभीर गड़गड़ाहट और विद्युत-तड़िता की तीव्र-तेज कड़कड़ाहट से सारा नभोमंडल गुंजायमान हो उठा। यदा-कदाचित चौंधा कर देने वाली बिजली कौंध उठती तो गंगा की लहरों में उसकी चमक-दमक प्रतिबिंबित हो उठती। ऐसे वातावरण में नाव धीरे-धीरे परले तट के समीप पहुँच रही थी। जैसे महाराज बिंबिसार ने गले-गले तक पानी में प्रवेश कर भगवान को विदाई दी वैसे ही वैशाली गणराज्य के राजाओं ने गले-गले तक पानी में उतर कर भगवान की अगवानी की। तट पर विपुल जनसमुदाय रंग-बिरंगी ध्वज-पताकाएं लिए हुए, फूलमालाओं और पुष्प-पंखुड़ियों से भरे थाल लिए हुए स्वागत के लिए उपस्थित था। आकाश में मेघावलियों का घनघोर गर्जन और रह-रह कर बिजली की कौंध-कड़कन अकालपीड़ित नागरिकों के मुरझाये मानस में आनंद की लहरें उद्वेलित कर रही थीं। भिक्षु-संघ सहित भगवान ने नौका पर से अवरोहण किया। तट पर पांव रखते ही मुसलाधार वर्षा होने लगी। जनता की जयजयकार की तुमुल ध्वनि सारे वायुमंडल में थिरक उठी। वर्षा में भीगते हुए लोग ढोल-मजीरे बजाने लगे, हर्ष-विभोर होकर नाचने-गाने लगे। उन दिनों की खुशियां प्रकट करने की प्रथा के अनुसार कई लोग अपने उत्तरीय (दुपट्टे) हवा में उछालने लगे। कई लोग अपनी अंगुलियां चिटकाने लगे या चुटकियां बजाने लगे; जैसे कि आजकल लोग तालियां बजा कर अपना हर्ष प्रकट करते हैं। ऊपर अंबर में बादल और बिजली की गर्जन-तर्जन तथा नीचे अवनि पर धाराप्रवाह वर्षा की रिमझिम-रिमझिम के साथ-साथ हर्षोत्फुल्ल जनसमूह का वादन-गायन और तथागत के प्रति अभिवादन के समवेत नारे सब मिला कर बड़ा ही भव्य समां बँध गया था। महाकारुणिक भगवान बुद्ध के साथ-साथ चिरप्रतीक्षित वर्षा के आगमन पर स्वागत का समारोह वायुमंडल को उमंग और उल्लास से आप्लावित कर रहा था। नौका से अवरोहण करते ही लिच्छवी राजाओं सहित सारा जनसमूह भगवान के चरणों में सश्रद्ध झुक गया।

उमड़ते हुए हर्षोल्लास के साथ सभी लोग भगवान और भिक्षु-संघ के पीछे-पीछे तीन योजन दूर वैशाली राजनगरी की ओर चल पड़े। जैसे महाराज बिंबिसार ने राजगृह से गंगातट तक के पांच योजन मार्ग को साफ-सुथरा करवा कर एक-एक योजन की दूरी पर विश्राम की व्यवस्था कर दी थी, उससे कहीं अच्छी व्यवस्था लिच्छवी राजाओं ने की।

यों तीन दिन की पदयात्रा पूरी करके वैशाली के नगर-द्वार के समीप विश्रामगृह में भगवान रुके। उन्होंने कुछ भिक्षुओं सहित आनन्द को तिहरी प्राचीरों से घिरी हुई वैशाली नगरी की परिक्रमा करते हुए रत्नसूत्र का परित्राण पाठ करने का आदेश दिया। दूसरे दिन भगवान ने नगर में प्रवेश किया। लिच्छवी राजा भिक्षु-संघ सहित उन्हें गणतंत्र के संथागार (संसद भवन) ले गये। वहां भगवान एक ऊंचे धर्मासन पर विराजमान हुए। उनके पीछे भिक्षु-संघ आदरपूर्वक आसीन हुआ। भिक्षु आनंद भगवान के समीप एक नीचे आसन पर बैठ गये। सामने वैशाली गणतंत्र का गणाधिपति, उसके समीप वैशाली का सेनापति तथा गणराज्य के अन्य राजागण विनीतभाव से बैठ गये। उनके पीछे नगर के अन्य अनेक गण्यमान्य लोग आ बैठे। सारा जनसमुदाय शांतिपूर्वक बैठ जाने पर भगवान ने स्वयं रत्नसूत्र का सस्वर पाठ किया। भगवान की महामांगलिक निम्नादी वाणी सुन कर सभी लिच्छवियों ने श्रद्धावनत होकर उल्लासभरे शब्दों में तीन बार साधुकार द्वारा हर्षानुमोदन किया।

जब भगवान गंगा के लिच्छवी तट पर उतरे तब वहां जो घनघोर वर्षा हुई, वह वैशाली नगरी तक नहीं पहुँची। लेकिन जब भगवान ने रत्नसूत्र का पाठ पूरा किया तो मेघगर्जना के साथ वैशाली में भी उतनी ही घनघोर वर्षा हुई। सारे दिन और सारी रात इस अजस्र जलधारा ने नगर के घर-घर को, वीथियों और पथों को नहला-धुला कर स्वच्छ कर दिया। सारा कूड़ा-कर्कट नगर के बाहर दूर तक प्रवाहित हो गया। वर्षा की वेगवती जलधारा के साथ नगर की सारी गंदगी ही नहीं बल्कि सारी दुर्गंध भी बह गयी। और उस गंदगी के प्रदूषण से उत्पन्न हुए सारे रोग बह गये। दुर्गंध से आकर्षित होकर एकत्र हुए अदृश्य प्रेत-प्राणी पलायन कर गये। वैशाली उस दुर्भाग्यपूर्ण दुर्भिक्ष की भीषण विभीषिका से विमुक्त हुई। प्राणियों के कालस्वरूप फैली हुई महामारी के प्रबल प्रकोप से विमुक्त हुई और प्रेतप्राणियों के उपद्रव-उत्पातों से विमुक्त हुई। त्रिविध व्यथा से पीड़ित, संतापित प्रजा पुनः सुख, शांति और समृद्धि का जीवन जी सकने की आशान्वित धन्यता के वातावरण से उल्लसित हो उठी।

नगरनिवासियों ने सारी राजधानी में सुगंधित जल का छिड़काव किया और उसे सुंदर सुमन मालाओं से सुसज्जित किया। भगवान वैशाली नगरी में पंद्रह दिनों तक विराजमान रहे। इस बीच उन्होंने राज्य परिषद और जनता के सम्मुख कई बार रत्नसूत्र दोहराया और कल्याणकारिणी धर्मदेशनाएं दी। यों वैशाली राजनगरी को अपनी मंगलवाणी से पावन कर लौटते हुए भगवान तीन दिनों की पदयात्रा करके गंगा नदी के उत्तरी तट पर पहुँचे। वहां लिच्छवी राजाओं ने गले-गले तक पानी में उतर कर भगवान को विदाई दी। दक्षिणी तट पर महाराज बिंबिसार ने उनका भव्य स्वागत किया। पांच दिन पांच योजन मार्ग पर चल कर भगवान राजगिरि पहुँचे।

जब भगवान वैशाली गये थे तब वहां केवल महाली ही उनका

एक मात्र श्रद्धालु शिष्य था जो कि स्रोतापन्न अवस्था प्राप्त कर चुका था। परंतु अब भगवान के वैशाली विहार के दौरान अनेक लोगों को यह अवस्था प्राप्त हुई और सारी वैशाली नगरी भगवान की असीम करुणा से प्रभावित होकर उनके प्रति श्रद्धासिक्त हो उठी।

स्वयं भगवान ने तथा नगर की परिक्रमा करते हुए भिक्षु आनंद ने जिस रत्नसूत्र का पाठ किया, आओ, उसे समझें। क्या है यह सूत्र और क्या है इसकी विशेषता? इस सूत्र के प्रत्येक पद के अंतिम चरण में सत्यक्रिया का मंगलघोष है यानी सत्यवचन के प्रताप से जन-मंगल का आह्वान है। जिसके बोल हैं – **एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु** , अर्थात इस सत्य वचन से स्वस्ति हो! मंगल हो! कल्याण हो!

कोई भी संत व्यक्ति लोक-कल्याण के लिए अपने निर्मल चित्त से किसी सत्य की घोषणा करते हुए मंगल कामना प्रकट करता है तो वह कामना फलीभूत होती ही है।

क्या थे ये सत्य वचन, जिनके मंगलघोष से व्याकुल, व्यथित वैशाली नगरी सुखद शांति से लाभान्वित हुई?

रत्नसूत्र में बुद्धरत्न, धर्मरत्न और संघरत्न की सच्चाई का उद्घोष किया गया था।

बुद्ध में, धर्म में और संघ में जो सद्गुण हैं वे ही उनमें समाये हुए उत्तम रत्न हैं।

क्या सद्गुण हैं बुद्ध में, जो रत्नस्वरूप हैं? रत्न भी ऐसे सर्वोत्तम कि जिनकी तुलना में यहांके , वहांके , लोक के ,परलोक के सभी रत्न फीके पड़ जाते हैं?

बुद्ध इसीलिए बुद्ध हैं कि उन्होंने सभी पारमिताओं को परिपूर्ण करके अपने ही पराक्रम और पुरुषार्थ द्वारा उस नित्य, शाश्वत, ध्रुव, इंद्रियातीत, लोकातीत निर्वाणिक परम सत्य का साक्षात्कार किया जो कि सर्वोत्तम है। जो सम्यक संबोधि प्राप्त की, वह भी सर्वोत्तम है। न इस भवमुक्त अवस्था से ऊंची कोई अन्य अवस्था है और न इस सम्यक संबोधि से ऊंची कोई अन्य बोधि। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए जिस विलुप्त हुए मुक्तिमार्ग को बुद्ध ने खोज निकाला उससे उत्तम अन्य कोई मार्ग भी नहीं है। और फिर जिस करुण चित्त से उसे आख्यात किया, जिस पर चल कर अनेक लोग लाभान्वित हुए और उसी भवमुक्त अवस्था तक पहुँच सके, भगवान की ऐसी अनुत्तर करुणा से बढ़ कर अन्य कोई करुणा भी नहीं। बुद्ध ने लोगों को ऐसा कल्याणकारी धर्म दिया जिसे धारण करता हुआ व्यक्ति उसी प्रकार सतत ऊर्ध्वगामी होता हुआ निर्वाण की ओर अग्रसर होता है जिस प्रकार बसंत ऋतु के आरंभ में वृक्षों के शिखर की शाखाएं, उपशाखाएं ऊपर की ओर उठती हैं। ऐसे परम हितकारी धर्म का प्रकाशन बुद्ध का सद्गुण है। ऐसा सर्वोत्तम, प्रणीत रत्न भी बुद्ध में समाया हुआ है।

सूत्र में धर्म में समाये हुए रत्नों की भी विस्तृत व्याख्या की गयी है। समाहितचित्त शाक्यमुनि ने उस वीतरागजन्य निर्वाणिक अमृत अवस्था को अधिगत किया, जहां सारे विकार क्षय हो जाते हैं। उस लोकोत्तर अवस्था रूपी रत्न के समान अन्य कोई रत्न नहीं है। उससे बढ़कर तो कुछ होता ही क्या?

बुद्धपूर्व के भारत में आठों ध्यान समापत्तियां (समाधियां) उपलब्ध थी। परंतु उनसे भव-मुक्ति की **अञ्ञा** यानी लोकोत्तर अरहंत अवस्था प्राप्त नहीं होती। केवल अरूप ब्रह्मलोक की भवाग्र अवस्था ही प्राप्त होती है। भगवान बुद्ध ने स्वयं खोज कर जो लोकातीत अवस्था प्राप्त कर सकने की विपश्यना विधि उसमें जोड़ी, उससे लोकीय ध्यान समापत्ति के साथ-साथ लोकोत्तर फल समापत्ति भी उपलब्ध हो सकी। यह ऐसी समाधि अवस्था है जिसमें बिना किसी अंतर के याने उसके साथ-साथ **अञ्ञा** की फल समापत्ति भी प्राप्त होती है। श्रेष्ठ बुद्ध ने इसे परम पवित्र समाधि कहा। इसके समान कोई अन्य समाधि नहीं है। धर्म में यह भी एक अनमोल, अनुत्तर गुण रत्न है।

धर्म ऐसा जिसमें शील, समाधि और प्रज्ञा के कल्याणिक समन्वय का पर्यवसान भव-विमुक्ति प्रदायक निर्वाणिक सत्य के साक्षात्कार में होता है। आठवें ध्यान की लोकीय समापत्ति भवाग्र लोक में जन्म देने पर भी सारे पूर्वसंचित भवसंस्कार नष्ट न हुए होने के कारण पुनः अधोगति की ओर ले जाती है। परंतु इस संपूर्ण भव-विमुक्त निर्वाण की अरहंत फल समापत्ति का साक्षात्कार होने पर पुनर्भव नहीं हो सकता। इससे प्रणीततर रत्न और क्या होगा? इससे प्रणीततर समाधि और क्या होगी?

ऐसे अनुपम अनुत्तर धर्म रत्न के अभ्यास द्वारा यदि केवल एक बुद्ध ही भवमुक्त अवस्था प्राप्त करके रह जाते तो यह भ्रम उत्पन्न हो सकता था कि यह विद्या वैज्ञानिक नहीं है। किसी अदृश्य शक्ति की कृपा पर अवलंबित है। परंतु महाकारुणिक बुद्ध ने इसे मुक्त हस्त से सभी मुमुक्षुओं को बांटा और अभ्यास करने वालों में से अनेकों ने इसी धर्म-विधि द्वारा अरहंत फल समापत्ति की वही मुक्त अवस्था प्राप्त की। तभी यह सर्वजनहितकारी, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम वैज्ञानिक विद्या कहलायी। यह विद्या भी धर्म में समाया हुआ अनमोल गुण-रत्न है।

इसी प्रकार संघ में समाये हुए गुण रत्न भी अनमोल हैं। भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिका संघ – यों संघ चार होते हैं। वैसे तो धर्म के सुमार्ग पर, ऋजु मार्ग पर, न्याय मार्ग पर और समुचित मार्ग पर चलने वाले श्रावक संघ ही कहलाते हैं। पर तथागत के वास्तविक श्रावक संघ तो वे ही हैं जो अनार्य से आर्य हो गए हैं। ऐसा श्रावक मार्ग-क्षण और फल-क्षण का एक जोड़ा कहलाता है। क्योंकि उसे मार्ग के साथ-साथ अगले ही क्षण फल-समापत्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार के मार्ग-फल के जोड़े भी चार होते हैं। यथा स्रोतापत्ति, सगदागामी, अनागामी और अंततः अरहंत मार्ग-फल प्राप्त का जोड़ा। ये चारों साधक सुगत के आर्य श्रावक संघ कहलाते हैं। ये सभी संतों द्वारा प्रशंसित होते हैं।

जैसे कि चंपा, बकुल आदि फूलों में जन्म के साथ ही सौंदर्य और सुगंध उत्पन्न होती है वैसे ही आर्य अवस्था प्राप्त होते ही इनमें साथ-साथ गुणरत्न उत्पन्न होते हैं। ये चारों जोड़े क्रमशः अधिक से अधिक शुद्ध चित्त होने के कारण इनके जीवनयापन के लिए भोजन, चीवर आदि का जो दान दिया जाता है उस पुण्यबीज के लिए ये महाफलदायक उत्तम पुण्यक्षेत्र होते हैं। यह भी उनका एक

अनुत्तर गुणरत्न है।

अनार्यों की अपेक्षा ये आर्य निश्चित रूप से महत्तर हैं, महान हैं क्योंकि इनकी भवविमुक्ति सुनिश्चित है। इन आर्यों में पहले तीन **सेक्ख** (शैक्ष्य) कहलाते हैं। यद्यपि उन्होंने अमृत चख लिया है तथापि पूर्णतया भवविमुक्त होने के लिए अभी उन्हें कुछ और सीखना बाकी है। परंतु चौथे आर्य जो अरहंत हैं वे पूर्णतया भवविमुक्त हो चुके। उन्हें कुछ और सीखना नहीं रह जाता। अतः वे **असेक्ख** (अशैक्ष्य) कहलाते हैं। **सेक्ख** में सबसे कनिष्ठ हैं –स्रोतापन्न। ये भी तीन प्रकार के होते हैं। **एक बीजी,** वे जो केवल एक बार जन्म लेकर और **कोलंकोलो,** जो दो या तीन बार जन्म लेकर भवमुक्त हो जायेंगे। **सक्खत्तुपरमो,** वे हैं जो सात बार संधावन, संसरण करते हुए भवमुक्त होंगे। यह जो तीसरे कनिष्ठतम आर्य हैं, वे भी विशिष्ट सद्गुण-रत्नों से संपन्न हैं।

गंभीरप्रज्ञ भगवान बुद्ध द्वारा प्रदर्शित दुःख, समुदय, निरोध और मार्गरूपी चारों आर्य सत्यों को भली-भांति अनुभवित कर लेने के कारण ये कनिष्ठतम आर्य कभी किसी जीवन में यदि भारी प्रमाद में पड़ जायँ तो भी आठवां जन्म ग्रहण नहीं कर सकते। सात जन्मों में उनकी भव-संसरण धारा दुर्बल होते-होते क्षय को प्राप्त हो ही जाती है। कनिष्ठतम आर्य संघ का यह भी एक उत्तम गुण-रत्न है।

ऐसा व्यक्ति परम सत्य निर्वाण का प्रथम साक्षात्कार करके जब मुक्ति के स्रोत में पड़ कर स्रोतापन्न बनता है तो उसके तीन बंधन तत्क्षण टूट जाते हैं।

(१) सत्कायदृष्टि –देह और चित्त का संपूर्ण अनित्यधर्मा क्षेत्र स्वानुभूति पर उतार लेने के कारण उसके प्रति भ्रामक आत्मबुद्धि स्वतः नष्ट हो जाती है।

(२) विचिकिच्छा –मुक्तिपथ पर चलते-चलते मुक्तिफल का स्वयं आस्वादन कर लेने के कारण मार्ग और मार्गदाता के प्रति संदेह होने का कोई कारण नहीं रह जाता।

(३) शीलव्रतों के प्रति आसक्ति – मुक्तिफलदायी मार्ग के अभाव में मानव किसी एक शील अथवा व्रत को उपहासास्पद अवस्था तक खींच कर उसे कर्मकांडबना लेता है और उसी से मुक्ति प्राप्त करने की मिथ्या मान्यता के प्रति आसक्त होता है। परिणामतः मुक्तिपथ के अन्य सभी अंगों की नितांत अवहेलना करता है। लेकिन मुक्ति तक का सारा मार्ग स्वानुभूति पर उतार लेने के बाद इस पथ के प्रत्येक अंग का महत्त्व भली-भांति स्पष्ट हो जाता है। अतः किसी भी एक अंग के प्रति आसक्त हो जाने की नासमझी स्वतः नष्ट हो जाती है।

ऐसा स्रोतापन्न व्यक्ति चारों अधोगतियों से पूर्णतया विमुक्त हो जाता है क्योंकि विपश्यना द्वारा इन दुर्गतियों के सभी भवकर्म-संस्कार नष्ट कर लेने पर ही निर्वाण का प्रथम साक्षात्कार कर पाता है और तदनन्तर अधोगति का ऐसा कोई संस्कार बना सकना उसके लिए असंभव हो जाता है। वह ऐसे दूषित स्वभाव-शिकंजे की गिरफ्त से सदा के लिए विमुक्त हो जाता है। उसमें यह भी एक उत्तम गुण-रत्न है।

ऐसा स्रोतापन्न व्यक्ति छः प्रकार के जघन्य दुष्कर्म कर ही नहीं सकता। –(१) मातृहत्या, (२) पितृहत्या, (३) अरहंतहत्या, (४) किसी बुद्ध पर आघात, (५) संघ में फूट डालना, और (६) किसी अज्ञानी आचार्य का अनुगमन उसके लिए अशक्य हो जाता है।

ऐसा स्रोतापन्न व्यक्ति यदि प्रमादवश काया, वाणी या चित्त से कभी कोई दुष्कर्म कर भी ले तो उसे छिपा नहीं सकता। स्वभावतः उसे अनावरित कर देता है और भविष्य में ऐसा दुष्कर्म न करने का दृढ़ संकल्प करता है। उसमें यह भी एक उत्तम गुण-रत्न है।

ये सब तो एक कनिष्ठतम आर्य-श्रावक संघ के गुण-रत्न हैं। परंतु एक पर एक अधिक ऊंची अवस्था को पार करते हुए जो अशैक्ष्य अरहंत अवस्था तक पहुँच गये, उनके गुण-रत्नों का तो कहना ही क्या!

वे तो गौतम बुद्ध के आदेशानुसार दृढ़चित्त होकर, पराक्रम-पुरुषार्थ करते हुए कृतकृत्यहो गये, प्राप्तव्य-प्राप्त हो गये। वे अमृत अवस्था में गहरे पैठ कर, नितांत भवविमुक्त हो, विमुक्ति रस का आस्वादन करने लगे।

ऐसे भव-विमुक्त सत्पुरुष सभी परिस्थितियों में वैसे ही नितांत निष्कंप रहते हैं जैसे कि नगर के द्वार पर गहरा गाड़ा हुआ स्तंभ चारों ओर के झंझावातों के घात-प्रतिघातों से कंपायमान नहीं होता। (उन दिनों ऐसे अकम्प्य स्तंभों को इंद्र-कील कहते थे, जिसका कि एक नमूना आज कुतुबमीनार के पास लौह-स्तम्भ के रूप में गड़ा हुआ है।)

ऐसे अरहंतों के सारे पुराने भव-कर्म क्षीण हो गये, फल देने लायक नहीं रहे। अब वे नया भवकर्म कर नहीं सकते। वे क्षीणबीज हो गये। उनका चित्त पुनर्जन्म से सर्वथा विरक्त हो गया। उनकी सारी तृष्णाएं समाप्त हो गयीं। शरीर छूटने पर वे इसी प्रकार परिनिवृत्त हो जाते हैं जैसे कि तेल और बाती समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है।

यह भी संघ में उतम रत्न है।

एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥

– इस सत्य वचन से स्वस्ति हो! कल्याण हो! मंगल हो!

इस महत्त्वपूर्ण सूत्र के पारायण से एक बात और स्पष्टतया उभर कर आती है कि तीन रत्नों की शरण किसी संप्रदाय में दीक्षित होने के लिए नहीं होती। शरण व्यक्ति की नहीं, व्यक्ति के सद्गुणों की है। बुद्ध की शरण माने बुद्ध में समाये हुए सद्-गुणों की शरण। धर्म की शरण माने धर्म में समाये हुए सद्-गुणों की शरण। संघ की शरण माने संघ में समाये हुए सद्-गुणों की शरण। सद्गुण ही रत्न हैं और रत्नों की ही शरण है। यह त्रिरत्न-शरण हमें इस बात की प्रेरणा देती है कि हम भी ऐसे सद्गुण अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते रहें। इसी में हमारा मंगल है, कल्याण है। इसी में हमारी सही माने में स्वस्ति है। इसी में सबका मंगल है कल्याण है। सबकी सही माने में स्वस्ति है।

कल्याणमित्र

स. ना. गो.